भूमि : अधिकार और अधिग्रहण के प्रश्न

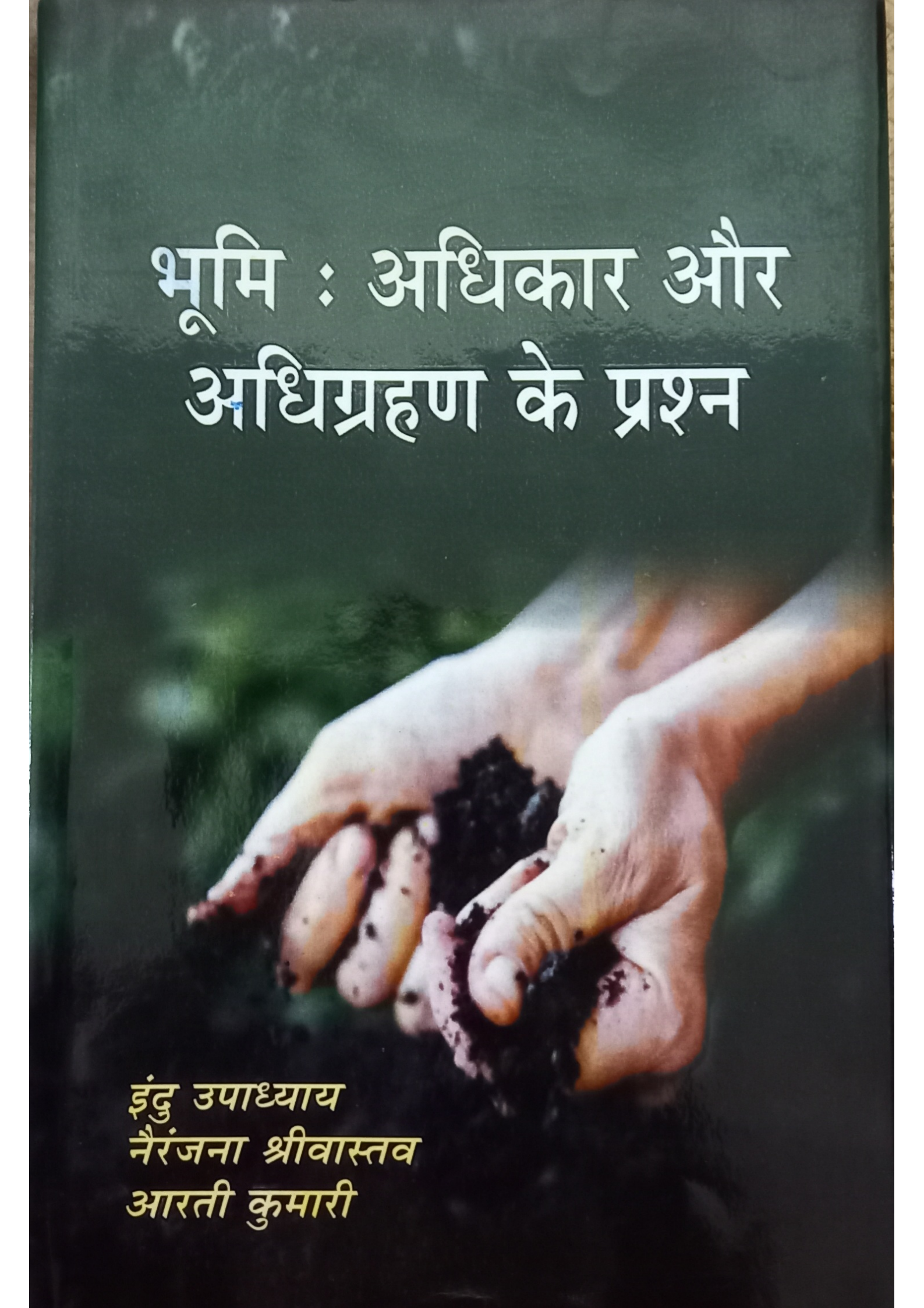

इंदु उपाध्याय
नैरंजना श्रीवास्तव
आरती कुमारी

भूमि : अधिकार और अधिग्रहण के प्रश्न

संरक्षिका

प्रो० रचना श्रीवास्तव
प्राचार्या
वसन्त कन्या महाविद्यालय
कमच्छा, वाराणसी

संपादिका

इंदु उपाध्याय
नैरंजना श्रीवास्तव
आरती कुमारी

2020

मनीष प्रकाशन

प्लाट नं0-26, रोहित नगर कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5

प्रकाशक :
मनीष प्रकाशन
प्लाट नं0-26, रोहित नगर कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5
दूरभाष : 0542-2310682
Email : manishprakashan9@gmail.com

संरक्षिका
प्रो० रचना श्रीवास्तव
प्राचार्या, व.क.म., कमच्छा, वाराणसी।

© सम्पादिका द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित
इंदु उपाध्याय
नैरंजना श्रीवास्तव
आरती कुमारी

प्रस्तुत पुस्तक में दिये गये सभी तथ्य लेखक के हैं, प्रकाशक का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। विवाद की स्थिति में लेखक स्वयं जिम्मेदार होगा।

ICSSR के आर्थिक अनुदान द्वारा सम्पन्न संगोष्ठी पर आधारित

प्रथम संस्करण : 2020
ISBN : 978-93-88007-49-8
मूल्य : 525. 00 रुपये

कम्प्यूटर अक्षर संरचना :
मनीष कम्प्यूटर मीडिया
प्लाट नं0-26, रोहित नगर कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5
दूरभाष : 0542-2310682

मुद्रक :
मनीष प्रिंटिंग प्रेस
साकेत नगर कालोनी, बी.एच.यू.,
वाराणसी -221005

समर्पण

भूमि और उसकी संवेदनशील
संतति को समर्पित

विषयानुक्रमणिका

समर्पण	....	iii
संदेश	....	v
आभार	....	vii
प्राक्कथन	....	ix

खंड-1

इतिहास के दर्पण में भूस्वामित्व और अधिग्रहण

1. गुप्तकालीन भूमिदान व्यवस्था : एक अध्ययन 19-27
   कु0 रेखा
2. गहड़वाल राजवंश में भू- अनुदान : एक अभिलेखीय अध्ययन 28-41
   डॉ0 आरती कुमारी
3. आर्थिक विकास एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम 42-48
   डॉ0 अरबिन्द कुमार
4. ब्रिटिश भारत में भूमि अधिग्रहण : भारतीय रेलवे के विशेष संदर्भ में 49-62
   डॉ0 शशिकेश
5. विकास एवं भूमि अधिग्रहण : भारत के सन्दर्भ में 63-70
   डॉ0 पूनम पाण्डेय
6. महिला सशक्तीकरण में भूमि अधिग्रहण अधिनियम की भूमिका 71-74
   डॉ0 प्रतिभा सिंह

खंड-2
साहित्य, समाज और भूमि अधिग्रहण

7. भूमि अधिग्रहण एवं हिन्दी उपन्यास 77-81
डॉ0 शशिकला

8. भूमि अधिग्रहण से प्रभावित सांगीतिक संस्कृति 82-88
डॉ0 सीमा वर्मा

9. हिंदी उपन्यासों में भूमि अधिग्रहण 89-93
डॉ0 सुषमा मौर्या

10. भूमि अधिग्रहण का संगीत कला पर प्रभाव 94-98
श्रीमती चेतना नागर

11. प्रेमचन्द और नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित भूमिहीन किसानों की स्थिति 99-104
डॉ0 सपना भूषण

★

खंड-1
इतिहास के दर्पण में भूस्वामित्व और अधिग्रहण

मनीष प्रकाशन

प्लाट नं0-26, रोहित नगर कालोनी,
बी.एच.यू., वाराणसी

ISBN - 978-93-88007-49-8

ISBN - 978-93-88007-49-8

मूल्य : 525.00 रुपये

पंचगंगा

नैरंजना श्रीवास्तव

युवा रचनाकार नैरंजना श्रीवास्तव के *'पंचगंगा'* का अवगाहन मेरे लिए बहुत मूल्यवान रहा। उनकी कहानियों, नाटकों की विविधवर्णी आभा मुझे चकित और अभिभूत करती है। यह भी समझ आया कि निश्चित रूप से ये सामान्यतः ली जाने वाली टाइमपास रचनायें नहीं। इन्हें तो गहरे डूबकर थाहना होगा, तभी जाना जा सकेगा कि लेखिका की कलम भाव, भाषा, संवेदना और शिल्प-सौष्ठव का जो सर्वथा नया रूपक रचती है, वह अब तक के साहित्य में हुए प्रयोगों से सर्वथा भिन्न है। अमूर्तन की भंगिमा बनाये रखते हुए भी ये रचनायें लोक तथा अभिजात्य में एक साथ प्रविष्ट हो लेती हैं।

आकाश से पाताल नापती लेखिका की कल्पना अतिरंजित होते हुए भी अपने लास्य में बेमिसाल है। स्थान-स्थान पर संवेदना की सघनता के बीच से नीति-वाक्यों सी उपजी बानगियाँ हमें विस्मित और रचना को समृद्ध करती हैं, यथा-

"यदि पाप और प्रतिशोध अभी भी हमारे जीवन में बचे रहे तो हम ज्ञानी कैसे?"

या फिर- "पोखर की थाली में कमल की कमी है क्या?"

अथवा- "जीवन आशा नहीं, उत्साह से जिया जाता है। आपको मृत्यु दिखी पर मृत्यु से पहले का जीवन नहीं।"

कुछ ऐसा लगता है जैसे काल्पनिक वृत्ति लेखिका के हाथों के धागे से जुड़ी उस पतंग की तरह है, जिसे वह मनचाही उड़ाने देकर उतनी ही सहजता से वास्तविकता की धरती पर उतार भी सकती है। समग्रतः, अपनी वैचारिक समृद्धि और चिन्तन से विस्मित कर देने वाली ये रचनायें किसी महाकाव्यात्मक परिव्याप्ति की संक्षिप्ति की तरह लगती हैं। लेखिका के प्रति अशेष शुभेच्छाओं के साथ -

सूर्यबाला

PILGRIMS
PILGRIMS PUBLISHING
◆ Varanasi ◆
www.pilgrimsonlineshop.com
www.pilgrimspublishing.in

ISBN 978-93-5076-243-1
9 789350 762431

पंचगंगा

लेखिका
नैरंजना श्रीवास्तव

PILGRIMS
पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग
वाराणसी

पंचगंगा

नैरंजना श्रीवास्तव

प्रकाशक

पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग

बी 27/98, ए-8, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-221010

टेलीफोन – (91-542) 2314060

e-mail : pilgrimspublishingvns@gmail.com

www.pilgrimsonlineshop.com

www.pilgrimspublishing.in

© नैरंजना श्रीवास्तव, सन् 2020

e-mail : nairanjana_srivastava@yahoo.co.in

आवरण चित्र — मंजू सिंह

आवरण सज्जा — क्रिस्टोफर बर्चेट

पृष्ठ सज्जा — सुरेश जायसवाल

ISBN : 978-93-5076-243-1

इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन, किसी भी प्रकार का आंशिक या पूर्ण प्रकाशन, इलेक्ट्रॉनिक प्रयोग, छायाचित्र का उपयोग आदि, विशेषज्ञ की समीक्षा के अलावा, प्रकाशक की अनुमति के बिना कानून का उल्लंघन है।

मुद्रण : भारत

विषय-सूची

दो शब्द

कहानी

मृत्युञ्जय ५

पद्महस्ता ११

नाटक

दास्तान-ए-बिसकिन ३८

कहाँ मेरा उजियारा ८६

विरासत १२३

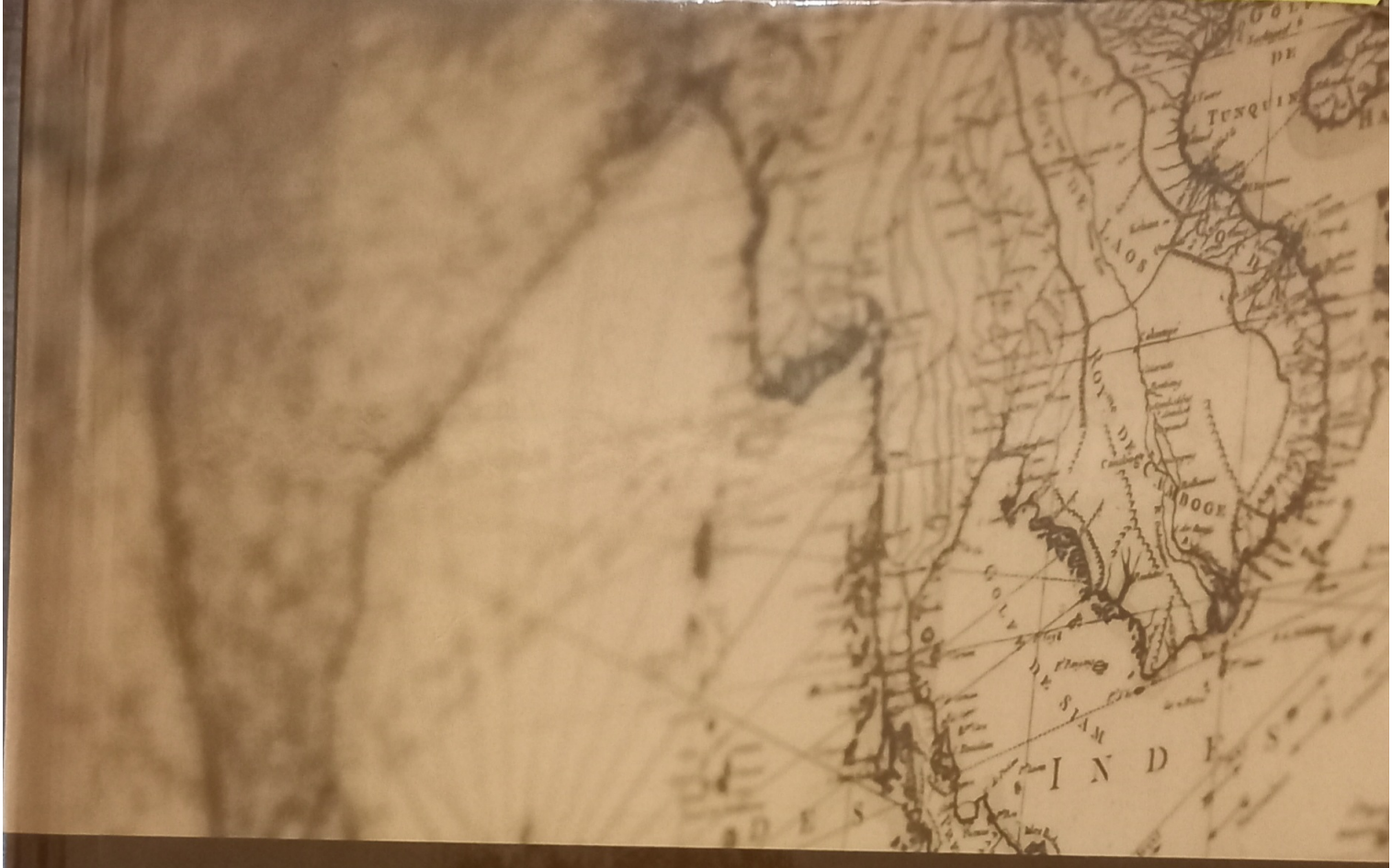

इतिहास के विविध आयाम

संपादक

डॉ सियाशरण त्रिपाठी

इतिहास के विविध आयाम

संपादक :

डॉ० सियाशरण त्रिपाठी

प्राध्यापक, श्री सांगवेद सं० महाविद्यालय,
नगहरीपुर, मुस्तफाबाद, जौनपुर, यू.पी.

सहसंपादक :

डॉ० संजय सिंह

फैकल्टी ऑफ आर्ट,
बी.एच.यू., वाराणसी, यू.पी.

डॉ० अनिल कुमार

प्राध्यापक, गोपालजी महाविद्यालय,
रेवती, बलिया, यू.पी.

स्टुडेरा प्रेस

2021

© प्रकाशक, 2021
978-93-85883-82-8
प्रथम संस्करण

हर संभव प्रयास के बावजूद पुस्तक में अभी भी कुछ त्रुटियां हो सकती हैं। प्रकाशक या कॉपीराइट धारक की पूर्व अनुमति के बिना पुस्तक या इसका कोई भी भाग इलेक्ट्रोनिक फोटोकॉपी या किसी अन्य रूप से संग्रहीत नहीं किया जा सकता है।

प्रकाशक

स्टूडेरा प्रेस
1586/113, त्रि नगर, दिल्ली 110035
दूरभाष: 011 27383728; 27380218
ई-मेल: info@studerapress.com
वेबसाइट: www.studerapress.com

विषय–सूची

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
	संपादकीय	ix
1.	महात्मा बुद्ध और उनका सामाजिक न्याय डॉ॰ सियाशरण त्रिपाठी	1
2.	महाभारत कालीन आर्थिक जीवन डॉ॰ अनिल कुमार	11
3.	डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल की धर्मदृष्टि डॉ॰ मुकेश कुमार सिंह	16
4.	दक्षिण–पूर्वी एशिया के वास्तु पर भारतीय प्रभाव डॉ॰ नैरंजना श्रीवास्तव	28
5.	सम्प्रदायिकता एवं भारत विभाजन डॉ॰ हरीश कुमार सिंह	41
6.	शंकर श्रीकृष्ण देव प्रणव गंगाधर गरुड	50
7.	सामाजिक स्तरीकरण का ऐतिहासिक अध्ययन डॉ॰ ज्योति रानी जायसवाल	57
8.	तीर्थों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व तथा वैज्ञानिक विश्लेषण (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में) डॉ॰ जगमोहनसिंह पूशाम	61
9.	गुप्तकालीन प्रशासन में लोकतांत्रिक तत्व डॉ॰ सीमा मिश्रा	81

10. मध्य गंगा बेसिन के पूर्वी भाग में लघु सरिताओं की स्थिति 92
डॉ० श्याम बाबू पटेल
11. पाश्चात्य विचारकों के मत का, भारतीय इतिहास के द्वारा खण्डन 123
डॉ० मानसिंह अजनार
12. अवध : एक परिचय 138
डॉ० आनन्द प्रकाश
13. महादेव गोविन्द रानाडे एक समग्र अध्ययन 153
डॉ० बिनीता पाण्डेय
14. प्राचीन भारत में देवदासी एवं सती प्रथा 160
डॉ० मुकेश प्रताप सिंह
15. शिक्षा पर गांधी के विचार 172
डॉ० रितेश्वर नाथ तिवारी, डॉ० विवेकानन्द तिवारी
16. आज का समय और कबीर का समाजदर्शन 176
उमा भारती
17. बौद्ध साहित्य में संगीतियों का महत्व 180
डॉ० चुनमुन पाण्डेय
17. Evolution of KnowledgeRelated to ore and Minerals 183
Dr Sanjay Kumar Tiwari
18. Political Encounters Between India and China 193
Dr. Sanjay Singh
19. Some Asoects of History Writing of Colonial India: Nehru's Perspective 203
Dr.Shreya Pathak
20. Women Sexuality in Early Kerala 229
Sandhya Munnikrishnan

21. Teaching & Education:Colonial and PostColonial Perspective in India 236
Dr.G.C.Pandey
22. Freedom Struggle of India With Special reference to Assam 251
Abdul Khaleque
23. Megalithic Culture of Northern Kerala: Preliminary observations and citations 260
Anitha M
24. Revenue Realization in Pargana Jodhpur of Marwar during 17th Century 269
Dr. Kanchan Lawaniya
25. Evolution of Judicial System in British Malabar 279
Dr.R.Sajan
26. Alchi: the Buddhist heritage of ladakh 286
Dr Shuchita Sharma
27. The Growth of the Revolutionary Activities of the Hindi-speaking People of Calcutta with Special Reference to Dumka (1905-1914) 292
Martina Chakraborty
28. Contribution of the 'Annals School' to Global Environmental History 301
Mr. Bhimashankar M. Birajdar
29. Food Culture of Eranad: Indicator of Identity 308
Dr. Haripriya. M

दक्षिण–पूर्वी एशिया के वास्तु पर भारतीय प्रभाव

'डॉ० नैरंजना श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, व.क.म., कमच्छा, वाराणसी

सुदूर पूर्व तथा मध्य एशिया के भारतीय उपनिवेशों की कला एवं संस्कृति, भारतीय कला–संस्कृति की उत्कृष्ट जिजीविषा का परिणाम कही जा सकती है। प्राचीन विश्व का मानचित्र ऐसे प्रभाव–विस्तार के प्रयासों के परिणाम का प्रतिदर्श है जिसमें राष्ट्र तथा सीमाओं की दुविधा के ऊपर विचारों और विश्वासों की सम्प्रेषणीयता कार्य कर रही थी। इस दृष्टि से भारत के ये उपनिवेश अपने उदात्त अर्थ में, 'असीम भारत' की अजस्र संस्कृति के केन्द्र कहे जा सकते हैं। सर जॉन मार्शल ने भारतीय कला के संदर्भ में उचित ही कहा, कि "भारत की भौगोलिक सीमाओं में भारतीय कला को जानना अधूरा–अपर्याप्त ज्ञान है।" इस ज्ञान की पूर्णता के लिए बृहत्तर भारत के कला–नमूनों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

दक्षिण–पूर्ण एशिया में भारतीय केन्द्रों के विषय में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, डच ईस्ट–इंडिया कम्पनी के पुरातत्व सर्विस तथा फ्रेंच स्कूल ऑफ आर्कियॉलॉजी के निरंतर शोधों से सुदूर पूर्व की जटिल–अबूझ संस्कृति विश्व–स्तर पर जानी और पढ़ी जाने लगी। इन गवेषणात्मक अध्ययनों ने भारत के औपनिवेशिक विस्तार के कारणों तथा प्रभावों को भी भली प्रकार जाँचा और अंकोरवाट तथा बोरोबुदूर के उन स्थापत्यगत चमत्कारों की भी समीक्षा की जिन्हें देखकर सिल्वाँ लेवी जैसे विद्वानों ने भारतीय कला की उत्कृष्टता को सीमान्तर प्रेरणा का परिणाम कहा। इस प्रकार भारतीय, डच, फ्रांसीसी तथा अँग्रेजी अन्वेषणों के द्वारा सुवर्ण भूमि, सुवर्ण द्वीप तथा इण्डो–चायना की भाषा, कला तथा अन्य सांस्कृतिक तत्वों के विकास का खाका तैयार किया जाना संभव है।

सुदूर–पूर्व के द्वीपों तथा देशों में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना संस्कृति की स्वाभाविक पहल रही। भारतीय व्यापारी मुनाफे की खोज;

राजपुरूष नए राज्य की खोज, तथा धर्मगुरू परोपकार के आंतरिक आंदोलन की प्रेरणा से द्वीपान्तरों को अग्रसर हुए। श्री विजय के शैलेन्द्र राज्य तथा चोलों के बीच हुए ग्यारहवीं शती ई. के तनावों के अतिरिक्त भारत का यह सांस्कृतिक गमन सामान्यतः शान्तिपूर्ण रहा। बंगाल की खाड़ी के भारतीय किनारे से मलाया के किनारे तक भारतीय नाविकों के बड़े जलपोत ईस्वीं सन की प्रारंभिक शातियों में ही आत्मविश्वास के साथ यात्रा कर रहे थे।

इस समय मध्य–एशिया की अस्थिर परिस्थितियों के कारण भारतीय व्यापारियों को मुनाफे के नए मार्ग ढूँढने पड़े, परिणामतः सुवर्ण भूमि/द्वीप के धातु–स्रोतों तथा इमारती लकड़ियों जैसे लाभ के व्यापार का दोहन प्रारंभ हुआ। इसी सिलसिले में नाविकों के दल के साथ विभिन्न कारणों से विस्थापित राजपुरुषों का वह दल भी रवाना हुआ जिसने जावा, सुमात्रा, बोर्नियों, आदि में सफल व सशक्त राजनैतिक केन्द्र भी विकसित कर लिए। इन राज्यों में धार्मिक व नैतिक अनुशासन का कार्य भारतीय धर्मगुरुओं ने किया जो शिव, विष्णु, देवी तथा शाक्यमुनि बुद्ध के आचरण, शक्ति व आदर्श से अनुप्राणित थे। इस प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों के प्रवेश का यह एक समवेत प्रयास सिद्ध हुआ जिसने अविरुद्ध रूप से यहाँ के नागरिकों के सांस्कृतिक उन्नयन के कार्य को गति दी।

भारतीयों द्वारा सांस्कृतिक विस्तार के इस क्रम को हम राजनैतिक उपनिवेशवाद से कुछ भिन्न समझ सकते हैं। इन द्वीपों तथा देशों से लगायत उत्तर और पूर्व के देश चीन द्वारा भी दक्षिण पूर्व एशिया के उपनिवेशों की स्थापना की गई किन्तु उनका उद्देश्य चीनी साम्राज्यवाद को विस्तार देना था। संभवतः इसी कारणवश भारत और चीन के बीच बेहतर विकल्प के रूप में सुदूर पूर्व के 'भारतीय राज्य' दीर्घकाल तक आस्तित्वमान रह सके। चीन के राजनैतिक संकट इन राज्यों में भारतीय संस्कृति के जीवन के लिए अमृत–सदृश सिद्ध हुए। यद्यपि जापान तक विस्तृत द्वीपों के इस समूह में चीन के राजनैतिक प्रभुत्व वाले छोटे राज्यों में भारतीय संस्कृति सदैव द्वितीयक ही रही किंतु जब भी चीन आंतरिक अशांति से ग्रस्त हुआ, भारतीय प्रभाव ने स्थान बनाना प्रारंभ कर दिया।

इस प्रकार भारत और चीन की संस्कृतियाँ यहाँ सम्मलित रूप से नए प्रभाव उत्पन्न करती दिखती हैं। क्रमशः शैव, वैष्णव तथा बौद्ध धर्मों के आवेग के समक्ष चीनी प्रभाव के अधिकांश तत्वों को लोप हो गया। द. पू. एशिया की सभ्यता एवं संस्कृति भारतीय दर्शन, साहित्य, भाषा–लिपि, शिल्पादर्शों, कलादर्शों, वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान से स्फुरित होने लगी। संस्कृत भाषा शासन की भाषा के रूप में इन द्वीप–देशान्तरों में एकता और विकास की भाषा बन गई। यहाँ के जन–मानस के आचार–विचार पर पौराणिक कथाओं की गहरी छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है साथ ही भारतीय धर्मशास्त्र के ग्रन्थ व्यवहार संबंधी क्रिया–व्यापार के आदर्श के रूप में सर्व–स्वीकृत हो जाते हैं। समग्रता में, यही सांस्कृतिक उपनिवेशन के आधारभूत तत्व थे।

कला एवं स्थापत्य की विशेष दृष्टि से दक्षिण–पूर्व के भारतीय उपनिवेशों में प्रविधि, प्रारूप तथा प्रदर्शन तीनों में भारतीय आदर्शों की अनुकृति दिखाई देती है। लगभग समकालीनता में ही भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया में स्थापत्य नमूने आकार ले रहे थे। यद्यपि पूजा–स्थलों के रूप में लकड़ी, पकी मिट्टी तथा ईंटों आदि के प्रयोग की लंबी पूर्व–परंपरा रही है पर भारत की समीओं में ही नहीं सीमान्तर के इन देशों–द्वीपों में भी ऐसे क्षयमान उदाहरणों को ढूँढना अत्यन्त दुरूह कार्य है। संभवतः इसी कारणवश मौर्यों के पूर्व की कोई उल्लेखनीय स्थापत्यगत प्राप्ति प्रतिवेदित नहीं की जा सकी है। मौर्य तथा मौर्योत्तर कालों में भी प्रस्तर माध्यम के प्रयोग के निरंतर साक्ष्यों का अभाव तथा उपलब्ध उदाहरण में भी वे दारुकार्य के अनुकारक तथा सजावटी सामान अथवा सतह के आवरण जैसे लगते हैं (जैसे साँची, भरहुत, अमरावती स्तूप)। स्थापत्य के अंगभूत रूप मे उनका विशेष प्रयोग गुप्तों से पूर्व नहीं दिखता तत्र च, मात्र पश्चात् कालीन उदाहरणों में वे प्रस्तर–'कला' का रूप धर पाते हैं। इस समय प्रस्तर के आधार, शरीर और सज्जा इन तीनों मुख्य–प्रयोजनों का सर्वांगीण विकास दिखता है। प्रायद्वीपी भारत में विंध्य के दक्षिण, जहाँ प्रस्तर की प्राप्ति अपेक्षाकृत अधिक थी, यह नवीन स्थापत्य–धारा तेजी से प्रसारित होती है। बादामी के चालुक्य, उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी राष्ट्रकूट तथा पल्लव–पाण्डय और उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी चोलों

के हाथ यह माध्यम और भी अधिक सार्थक रूप से आकार लेने लगता है। उल्लेखनीय है कि कला जिन विभिन्न प्रभावकों का अनुसरण करती है उनमें साम्राज्यिक मंशा व चरित्र भी महत्वपूर्ण कारक हैं। दक्षिण के उपरोक्त राज्य, शक्ति के स्थायित्व तथा संकेन्द्रीकरण में विश्वास रखते थे तथा अपने राज्य में उन्होनें जिन कला, स्थापत्य–गत–नमूनों को गढ़वाया वे प्रस्तर माध्यम के समान–चरित्रों पर ही उतारे जा सकते थे। इसी कारण दक्षिण में प्रस्तर–कला, उत्तर–भारत की अपेक्षा अधिक सरलता, प्रकृष्टता और वैभव के साथ उभरती दिखाई देती है।

दक्षिण की स्थापत्य कला बादामी के चालुक्यों के समय से चोलों के काल तक एक मनोरंजक यात्रा तय कर चुकी थी। चालुक्यों के महाकूटेश्वर, ऐहोल तथा पट्टदकल के कलाकेन्द्रों में उत्तरी व दक्षिणी शैलियों का मिश्रण दिखता है। मंदिर–निर्माण की उत्तरी 'प्रासाद' शैली एवं दक्षिण की 'विमान' शैलियों का पृथक रूपेण विकास इसके पश्चात् कालों में हुआ। तोरण युक्त प्रासाद, नागर, स्थापत्य शैली में उत्तर भारत तथा दकन में निर्मित होने लगे यथा कलिंग, गुजरात एवं गोपुरम् युक्त विशाल विमानों का निर्माण चोलों के राज्य में बहुतायत से किया गया। निर्माण शैली की आवश्यकता तथा भौगोलिक बाध्यताओं के कारण हमें उत्तर तथा दक्षिण में प्रस्तर के चयन में भी विभेद दिखता है। उत्तर भारत व दकन के अधिकांश नमूने बलुआ पत्थर, लाइम स्टोन, सोप–स्टोन या दूसरे कम–सख्त प्रस्तर में बने हैं तथा दक्षिण में ग्रेनाइट या चार्नोकाइट का सर्वत्र प्रयोग किया गया। दक्षिण के इस प्रयोग को विजयनगर साम्राज्य के काल में दकन क्षेत्र में भी प्रचलित कर दिया गया और इस तरह उत्तर एवं दक्षिण का विभेद और स्पष्ट हो गया।

भारतीय स्थापत्य कला की एक अन्य महती विशेषता बिना सीमेंट के भवनों के निर्माण की रही है। यह तकनीक बेहद सधे हुए शिल्प–कौशल तथा सुविकसित शिल्प–शास्त्र के बिना संभव नहीं इसी कारण अत्यंत प्राचीन समय से ही हमें शिल्प–शास्त्रीय ग्रंथों–विष्णुधर्मोत्तर पुराणादि का प्रणयन प्राप्त होने लगता है। पत्थरों के व्यवस्थित संयोजन के द्वारा विशाल मंदिरों, तोरणों, स्तूपों आदि का निर्माण किया गया जो शोध–पूर्ण प्रयासों से ही संभव था।

दक्षिण–पूर्व एशिया में हम भारतीय स्थापत्य कौशल के इन तत्वों का सुरुचिपूर्ण समाहार देखते हैं। प्रायद्वीपी भारत के दक्षिण, सबसे निकटवर्ती श्रीलंका में, भवन निर्माण; प्रस्तर और धातु का मूर्तिशिल्प अधिकांशतः भारतीय परंपरा में ढला है। यद्यपि सिंहल की स्थानीय विशेषताएं भी इनमें विद्यमान हैं। श्रीलंका की वास्तुकला भारतीय प्रभाव से अभिप्रेरित तथा दक्षिणपूर्व की कला की प्रभावक कही जा सकती है। जो अवशेष श्रीलंका में आज प्राप्त हैं, वे अधिकांश कुषाण, गुप्त और मध्यकालीन हैं। प्राप्त पुरातात्विक सामग्री और भवनों की तल योजना इनके भारतीय आधार को परिलक्षित करती है। अनुराधापुर का प्राचीन दागोबा भारतीय स्तूपों के ही समान वर्तुलाकार है। बर्मा की शिल्पकला पर भारतीय प्रभाव की मात्रा वहाँ के विशाल वास्तु–निर्मितियों में देखी जा सकती है। अधिकांश पैगोडा ईंटों से बने हैं और कुछ पत्थर के भी हैं। कुछपर पालों की कला की छाप है तो कुछ सिंहल से प्रेरित हैं। कुछ के शिखर भारत के नागर शिखरों जैसे हैं। इनमें महाबोधि मंदिर का शिखर भारत के बोधगया मंदिर के ही समान निर्मित किया गया। गुप्त और पल्लव कालों की वास्तुकला का प्रभाव हमें स्याम के प्रमथोम, केदा, तकुआ–पा, लिगोर तथा राजबुरी के अवशिष्ट मूर्तिशिल्प और वास्तु अवशेषों में दिखता है। भारतीय वास्तुकला के सर्वाधिक विशद प्रभाव को कम्बुज की वास्तुकला में देखा जा सकता है। यहाँ गुप्तकाल से लेकर तेरहवीं शताब्दी ईसवीं पर्यन्त व्याधपुर की प्राचीन नगरी में ईंटों और पत्थरों के अनेक मंदिर बने। यद्यपि सातवीं शताब्दी ईसवी से ख्मेर की क्लासिकल कला प्रमुखता से विकसित हुई जिसपर चीनी प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक था किन्तु भारतीय प्रतीक अभी भी प्रभावी बने रहे। भारत की पौराणिक परिकल्पना तथा शैव और तांत्रिक महायान के देवताओं का अंकन अभी भी जारी रहा। बारहवीं शताब्दी ईसवीं में सूर्यवर्मन द्वितीय द्वारा अंकोरवाट के प्रसिद्ध विष्णु मंदिर की संकल्पना प्रत्येक अंश में भारतीय है। मंदिर की भित्ति पर रामायण के दृश्य अंकित हैं तथा वास्तु पर भी पूर्ण भारतीय असर स्पष्ट है। यह विदेशों में बसने वाले प्रवासी भारतीयों की भारतीय कला के विस्तार की उत्कट इच्छा का प्रमाण ही माना जा सकता है। महाभारत और रामायण के दृश्यों का प्रयोग जयवर्मन षष्टम ने भी लिंगपुर के मंदिर में करवाया। यहाँ 'गिरिश्रृंग' की उपाधि से विभूषित

विशाल शिखर अधुना अप्राप्य है। चम्पा या वियतनाम के शिल्पी भी भारतीय कला से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। यहाँ शैव और बौद्ध पूजा गृहों का निर्माण साधारणतया ईंटों से किया गया। वास्तु के इन सुन्दर नमूनों में शिखर की संयोजना और उसपर आमलक का मंडन भारतीय प्रभाव का सूचक है। चम्पा की कला पर कंबुज की कला का असर है और अलंकरणों में भारतीय तत्व बहुतायत से दिखाई देते हैं।

भारत के प्रायद्वीपी हिस्से के निकट स्थित इंडोनेशिया के द्वीपों में स्तूपों व भवनों के निर्माण हेतु कठोर प्रस्तर प्रयुक्त किए गए जो कि प्रभाव के प्रवाह का सीधा–सरल उदाहरण माना जा सकता है। इंडोनेशिया के अतिरिक्त अन्य स्थलों के स्थापत्य नमूनों में मुलायम पत्थरों का प्रयोग किया गया है। किसी योजक प्रदार्थ (Cementing agent) को न इस्तेमाल करने के अनुकरण ने इन द्वीपों के वास्तु शिल्प के समक्ष भारतीय शिल्प–शास्त्र के अध्ययन तथा अनुकरण की बाध्यता भी प्रस्तुत की होगी जिसके कारण योजना तथा उत्सेध में भी ये वास्तु नमूने पूर्ण भारतीय प्रतीत होते हैं। बोरोबुदूर, प्रम्बनम तथा अंकोरवाट की विशाल संरचनाओं में प्रदक्षिणापथ का नियोजन भारतीय आदर्शों से प्रेरित है। वस्तुतः भारतीय धर्म एवं दर्शन के ही समान इन द्वीपों तथा देशों के धर्म में भी सर्वपूजावाद के तत्व उपस्थित थे जिसके कारण पूजा–विधि को अपनाने में भी किंचित समय न लगा होगा। बृहत्तर भारत के नमूनों में, इसी कारण वश, किसी वास्तुगत मिलावट अथवा स्थानीय प्रभाव को हम उपस्थित नहीं पाते। स्थानीय विधा का प्रयोग मात्र अलंकरणों में किया गया।

विकास के अग्रिम चरणों में द्वीपान्तर के वास्तु–नमूनों पर भारत के साथ–साथ श्रीलंका के वास्तु–आदर्शों का प्रभाव भी सम्मिलित होता रहा। भारतीय वास्तु के समान बर्मा, कंबोडिया, थाइलैंड, इंडोनेशिया में नागरशैली के पीठिका–युक्त प्रासाद के निर्माण की शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। पगान का आनंद मंदिर इसी शैली में निर्मित वैभवशाली बौद्ध संरचना है किंतु शीर्ष भाग पर घंटाकार अंड भाग की उपस्थित सिंहली प्रभाव को परिलक्षित करती है। आनंद मंदिर की सुविकसित संरचना अपने बीज रूप में बंगाल के ही सोमपुरी/पहाड़पुर के बौद्ध मंदिर से प्रेरित थी। बर्मा में सिंहल के समान 'हती' अथवा लंबी छत्रयष्टि के निर्माण का प्रचलन था

जिसने स्तूप–शीर्ष से हर्मिका को विस्थापित कर दिया था।

जावा में 'बोरोबुदूर' का विशाल बौद्ध मंदिर भारत में लौरिया नंदनगढ़ के बौद्ध–स्तूप (चौथी शती ईस्वी) से आकृति में छोटा होकर भी कारीगरी में बढ़कर है। यह मंदिर उत्तर भारत में पाल मंदिरों व दक्षिण भारत की 'विमान' संरचना से प्रभावित है जिसमें तलों की निर्माण–योजना तथा देवकुलिकाओं और छोटे स्तूपों की जटिल संयोजना द्वारा शिल्पगत–कल्पना को परिपाक दिया गया है। बोरोबुदूर का शिल्प केडू के मैदान की ऊँचाई पर अवस्थित है तथा पहाड़ी को काटकर सीढ़ियाँ बना दी गयी हैं। इस आधार पर अनेक तलों वाले पिरामिडाकार प्रधानस्तूप को तीन वृत्तों के बीच में अवस्थित किया गया है। इसके चारों ओर 72 छोटे स्तूप बनाये गये हैं। मुख्य मंदिर की प्रत्येक दिशा में सोपान मार्ग मंदिर के ऊपर वाले तल को पहुंचाते हैं। नीचे का प्रत्येक तल प्रदक्षिणा के लिए स्थान प्रदान करता है। जिसकी दीवारों पर ललित विस्तर, दिव्यावदान और जातक माला से लेकर बुद्ध के जीवन की घटनाओं को उभारा गया है। ये अंकन, दृश्यों की लम्बी कतार बनाते हैं जिसके कारण आठवीं, नवीं शताब्दी ईसवीं का यह शैलेन्द्र–वास्तु संसार के सुन्दरतम वास्तु नमूनों में परिगणित है।

भारत तथा भारत के दक्षिण पूर्वस्थ देशान्तर में मंदिर निर्माण के जिस आदर्श को अपनाया गया उसमें भारतीय दर्शन और जीवन–शैली की छाप

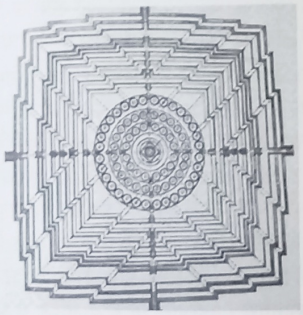

बोरोबुदूर स्तूप की तल–योजना

स्पष्ट देखी जा सकती है। मुख्य पूजा–वस्तु की स्थापना के ऊपर शीर्ष भाग निर्मित किया गया तथा प्रदक्षिणा–पथ की व्यवस्था द्वारा आराध्य की चतुर्दिक परिक्रमा की योजना की गई। संपूर्ण मंदिर एक इकाई की भाँति पादपीठ पर खड़ा किया गया जिसके सभी अंगों का समाहार ऊँचाई में एक नियत बिंदु पर होता है। इस प्रकार भारतीयों के ये पूजा स्थल स्वयं मानव शरीर के प्रतिबिंब के रूप में कल्पित किए गए।

शिखर की निर्माण योजना में कदलिका–करण–विधि का प्रयोग भारतीयों का निजी वैशिष्ट्य है। यद्यपि ळण्त्ण्ैंतउं के अनुसार कुछ स्थानों पर (इलाहाबाद के समीप) ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में ईंटों व प्रस्तर निर्मित वास्तविक चापदार शिखर के प्रयोग से भवन बनाए गए किन्तु सामान्य–निर्माण–आदर्श के रूप में भारतीय वास्तुकारों ने कदलिका–करण विधि का ही उपयोग किया। इस विधि से छत को आंतरिक रूप से एक पर एक प्रस्तर पटियाओं द्वारा ढँकते हुए शीर्ष भाग में एक छोटे छिद्र तक पहुँचते हैं जहाँ स्तूपिका या आमलक व कलश स्थापित करके शिखर को पूर्णाकार देते हैं। बहिर्भाग में ऊरुशृँगों के माध्यम से शिखर को पर्वतराज हिमालय की भाँति उन्नत व भव्य आकार दिया गया है। नागर शिखरों के ही दूसरे रूप की प्राप्ति उड़ीसा, मध्य भारत तथा दकन से होती है जहाँ मंडप के ऊपर चौकोर शिखर के किनारों पर आमलकों की व्यवस्था की गई। इस प्रकार भारत में वास्तविक चाप का सर्वत्र अभाव दिखता है तथा इसी भारतीय आदर्श पर दक्षिण पूर्वी एशिया में भी मंदिरों के शिखर निर्मित किए गए।

पश्चिमी तथा दक्षिण भारत के शाला व पंजर तल–योजन पर शिखरों की योजना किंचित् भिन्न प्रकार से की गई। ये स्तूपिकाओं की योजना से बने शिखर तथा गजपृष्ठाकार शिखरों से सज्जित संरचनाएँ उत्तर के वर्गाकार तल विन्यास से भिन्न थीं, फिर भी वास्तविक मेहराबों का विनियोग नहीं किया गया तथा शिखर के उठान की देशी तकनीक ही प्रयुक्त होती रही। हमें दक्षिण–पूर्वी एशिया के देशों में भी इसी भारतीय स्थापत्य तकनीक का विनियोग प्राप्त होता है। अपनी संपूर्णता में इन देशों का स्थापत्य पंचायतन–योजना, तोरण तथा नासिका के प्रयोग, भव्यता तथा शिल्पकारी में बिल्कुल भारतीय है। शिल्प–ग्रंथों में निर्दिष्ट अधिष्ठानाधीन

'उपपीठ' के नियोजन से इन देशों ने अपने स्थापत्य नमूनों को और अधिक भव्यता प्रदान करने की चेष्टा की। दक्षिण भारतीय मंदिर इस संदर्भ में इनके आदर्श बने। एक ही परिसर में स्थित मुख्य मंदिर के चतुर्दिक केन्द्रदर्शी छोटे मंदिरों के निर्माण की परंपरा यहाँ भी अनुकृत होती दिखती है। परिसर भित्ति के बाह्य भाग में अन्तः तथा बहिर्मुखी छोटी देवकुलिकाओं की सज्जा भी की गई तथा मंदिरों के आकार और दर्शन को और प्रखर किया जाने लगा। जावा के चण्डी सेबू, चंडी लोरो जोगरंग और प्रम्बनम के मंदिर इसी आदर्श पर बनाए गए जिसकी परिकल्पना कांची के कैलाशनाथ मंदिर में पहले ही साकार की गई थी। चण्डी सेबू मंदिर चारो ओर छोटे परिवार मंदिरों से आवृत्त है। दीवारों पर उभरे अलंकरण की परंपरा है तथा बाहरी दीवार के निकट ही लगभग 250 अलंकृत मंदिर मध्यवर्ती प्रधान मंदिर को भव्य बना देते हैं। चण्डी लोरो जोगरंग का शैव मंदिर भी छोटे 8 मंदिरों के परिवारालयों से घिरा है। जिसके चारों ओर बाहरी दीवारों का घेरा परकोटे के समान प्रतीत होता है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के तीन मंदिरों में मध्यवर्ती शिव मंदिर विशालतम है जिसका स्वरूप बोरोबुदूर के स्तूप के समान ही है। कंबोडिया के अंकोरवाट मंदिर का गोपुरम् तथा इंडोनेशिया के जेदोंग और प्लसोन मंदिरों का गोपुरम् भी दक्षिण–भारतीय मंदिरों की प्रेरणा पर निर्मित किया गया। गोपुरम् के माध्यम से दक्षिण भारतीय मंदिरों के ही समान, परिसर या प्राकार के छोटे मंदिरों को संतुलन तथा आकर्षण प्रदान किया गया। जावा के दसवीं से पंद्रहवीं शताब्दी ईस्वी के मंदिरों में गोपुर या 'दुआर' की यह व्यवस्था दो समान अर्द्धभागों के रूप में प्राप्त होती है जिन्हें सोपानों की पंक्ति से आगे और पीछे से जोड़ दिया गया। तल योजना में भी दक्षिण पूर्व एशियाई द्वीप–समूह के स्थापत्य नमूने स्पष्टतः भारतीय उदाहरणों से प्रेरित रहे हैं। जंघा तथा शिखर भाग के एकाधिक प्रक्षेपों वाले पश्चिमी चालुक्य या होयसल नमूनों की तरह थाइलैंड का 'वट महाधातु' मंदिर इस वर्ग का उत्तम उदाहरण है।

वट महाबोधि मंदिर

जावा का 'चंडी–सरी' मंदिर सोपानयुक्त आयताकार नमूनों में से एक है। इसमें विहार आदि निर्मित किये गये हैं। अष्टकोणीय मंदिरों के

प्रकार में होनान का सुंग–शान पगोडा इस वर्ग की संरचनाओं में द्वीपांतरों के प्राचीनतम प्रतिनिधियों में से एक है। बौद्ध स्तूपों की वृत्ताकार संरचना के अतिरिक्त जावा के चंडी–जबोंग शिव–मंदिर में हमें वृत्ताकार तल–योजना दिखाई देती है जो सामान्यतः प्रचलन में नहीं दिखती। आज खण्डहर के रूप में अवशिष्ट यह भवन वर्गाकार पादपीठ पर अवस्थित है जिसे जंघा के उत्सेध में बड़े ही कौशल के साथ वृत्ताकृति प्रदान की गई है। श्री कुमारस्वामी ने इस मंदिर को पूर्वी जावानी वास्तु का सर्वोत्कृष्ट नमूना माना है।

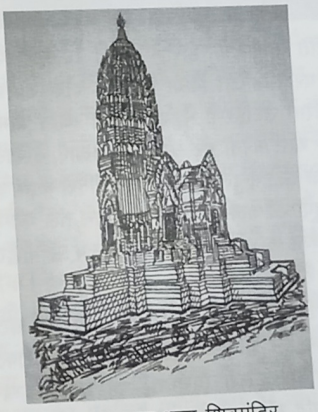

प्रम्बनम का भग्न शिवमंदिर

भारतीय उदाहरणों के ही समान जावा के चंडी या मंदिरों में भद्रों और गवाक्षों की योजना से न केवल जंघाभाग की संरचना को भव्यता दी गई वरन् प्रकाश व स्थान की भी अतिरिक्त व्यवस्था की गई। मंदिरों पर बाह्य देवकुलिकाओं तथा प्रवेश–द्वार की व्यवस्था पल्लवों के कैलाशनाथ तथा पनमलाई मंदिरों से प्रेरित हुई है। अन्य विकसित उदाहरणों पर दकन के पश्चिमी चालुक्य मंदिरों की छाप स्पष्ट द्रष्टव्य है। हमें कंबोडिया के बेयन तथा अंकोरवाट मंदिरों में चतुष्मुख–पंचायतन तल–योजना के दर्शन होते हैं। उल्लेखनीय है कि दक्षिण–पूर्व द्वीपों/देशों के मंदिरों में दक्षिण भारत के विमान–शैली का स्थापत्य अधिक प्रचलित हुआ। दक्षिण के

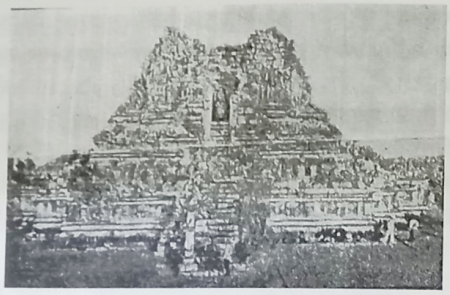

विमानों की भाँति 'तलों' के 'हार' पर कूट शाला व पंजर को यहाँ भी निर्दिष्ट स्थान पर संयोजित किया गया है। दोरोवटी, घटोत्कच के चंडी मंदिरों के विकसित उदाहरणों में 'शाला' का स्थान 'सभा' की योजना ले लेती है जिसके चारों कोनों पर घुमावदार रेखाएँ उल्लेखनीय हैं। रोचक तरीके से जावा के चंडी मेन्दुत व चंडी पवोन मंदिरों में हमें कूट–शाला–पंजर के स्थान पर स्तूपों की तल–योजना का प्रयोग तल की सज्जा में दिखाई देता है। यह सज्जा कालांतर में परंपरागत रूप से बौद्धेतर संरचनाओं में भी दिखाई देती है।

शिखर के विभिन्न तलों के शीर्षस्थ भाग पर घंटाकृति स्तूप के आकार की सज्जा इन द्वीपों–देशों की स्थापत्य–विशेषता है। भारतीय आदर्श पर स्तूपी या कलश (पूर्णघट) का प्रयोग प्रम्बनम् तथा चंडी सिंगसरी, बदुत आदि मंदिरों में दिखता है। घंटाकृति स्तूपी से उष्णीष की सज्जा इंडोनेशियाई देश के स्थापत्य अवशेषों में दिखती है। द्वीपान्तर के अन्य हिस्सों में उर्ध्वगामी ह्रस्वमान छतरियों के द्वारा शीर्ष को मंडित किया गया है।

मंदिर तथा अन्य उपासना गृहों में स्थापत्य–सज्जा के आवश्यक अंग के रूप में मकर–तोरण की सज्जा को भी दक्षिण–पूर्व के भवनों में अपना लिया गया। जावा में इसे 'काल–मकर' संबोधन प्राप्त हुआ, परन्तु प्रयोग की दृष्टि से यह भारतीय उदाहरणों के समान है। द्वार–तोरण, भित्ति–तोरण, नासिका तथा मुख–पट्टी आदि स्थलों पर मकर–युगल के मुख से निर्गत पुष्प–पत्र वल्लरी तथा माल्यदाम की सज्जा का भारतीय

अलंकरणों में विशेष स्थान है। साँची स्तूप से भुवनेश्वर के मंदिरों और दक्षिण–भारत के उन्नत विमानों तक ये मकर तोरण किसी न किसी रूप में भित्तियों तथा स्तम्भों पर विद्यमान रहे। जहाँ स्तम्भों पर स्वतंत्ररूपेण उत्कीर्णन का अवसर न मिला वहाँ इनका प्रयोग कपोत पर उत्कीर्ण 'कुडु' के रूप में किया गया। सिंहमुख अथवा कीर्तिमुख के रूप में यह ललाटबिंब की शोभा भी बना। दक्षिण विमानों के कपोत पर विशेष रूप से अंकित इन 'कुडुओं' को 'छाप' स्थापत्य के उदाहरण 'होआलाई' में दक्षिणी टावर की सज्जा में देखा जा सकता है। जावा के प्रसिद्ध 'काल–मकर' प्रतीक को हम द्वार–सज्जा के जटिल उपकरण के रूप में समझ सकते हैं। भित्ति के आलों या द्वार–शाखा के अति विशिष्ट 'सर्प–शाखा' के स्थान पर मकर शाखा के प्रयोग तथा उसके साथ मकर तोरण और ललाट बिंब के रूप में 'काल–मुख' के सम्मिलित योग को जावा के मंदिरों पर अंकित 'काल–मकर' समझना चाहिए। मूलतः यह भारतीय मंदिर–अलंकरण से प्रेरित एक विकसित प्रतीक था। पुनश्च इसका विकसित रूप हमें ख्मेर की कला में दिखाई देता है। भारत में गुप्त–चालुक्यों द्वारा पल्लवित मंदिर–स्थापत्य की बहुरंगी विधाओं को द्वीपान्तरों ने विकास का एक नया चोला पहना दिया। कम्बुज के हन्चेई मंदिरों में सुन्दर मकर तोरण तथा हंसों की पंक्तियाँ और कीर्ति मुखों में मस्तक अंकित किये गये प्राप्त होते हैं। भीतर गाँव के गुप्त कालीन मंदिर से इनकी समानता सहज ही स्थापित की जा सकती है। कम्पोनथोम के मंदिरों में भी मकर लांछित तोरणद्वार गुप्त कालीन प्रचलित प्रतीक रहा है। नाग तोरण से लांछित अमरेन्द्रपुर का प्रसिद्ध बन्तेई छ्मेर भी इस संदर्भ में उद्धृत किया जा सकता है। चम्पा में भद्रेश्वर मंदिर के अवशेषों में भी मकर तोरण और हंस के अलंकरण का प्राधान्य उल्लेखनीय है।

सुदूर–पूर्व एशिया की कला में व्याप्त भारतीय तत्वों के इस अध्ययन द्वारा हमें भारतीय औपनिवेशिक कला के सामान्य गुणों को समझने में सहायता होगी। भारत के बाहर भारतीय कला का विकास उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार भारतीय राजवंशों और कला–प्रेमियों के उत्साह और तकनीकी शिल्पज्ञान के परिणाम–स्वरूप भारत में हुआ था। दक्षिण–पूर्व की कला, इस प्रकार, प्रतीकों, क्रियाविधि, सामान्य आदर्शों, योजना तथा

अलंकरण में भारतीय ही थी। संभवतः भारतीय धर्मों के भौतिक प्रतीकों के रूप में स्थापत्य के ये उदाहरण इन द्वीपों एवं देशों में सहज बाध्यता के साथ प्रविष्ट हो गए। ये और बात थी कि कालान्तर में वहाँ की अपनी प्रेरणा ने भारतीय प्रभावों में किंचित बदलाव भी किए। परिणामस्वरूप, जैसा श्री कुमारस्वामी जी ने इंगित किया, सुदूर–पूर्व का स्थापत्य समयान्तराल से तीन रूपों में प्रत्यक्ष होता है। प्रथम, वह समय, जबकि भारत की सादगी, भव्यता और निजता ने द्वीपान्तर के देशों को मन्त्रमुग्ध कर दिया और स्थापत्य के समस्त अंगों व छवियों में भारतीयता आत्मसात् कर ली गई। (उदा0 छठीं व सातवीं शती की फूनान की कला); द्वितीय, आठवीं से बारहवीं शती ईस्वी का वह काल जबकि भारतीय प्रभाव में द्वीपान्तर के स्थानीय तत्व मिलने लगे और तृतीय, वर्तमान तक प्रभावी वह काल जबकि पूर्व की इन धाराओं के मंथन के परिणाम स्वरूप स्थानीय लोक धारा की विलक्षण प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होने लगीं। शिल्प और कला का यह विकासशील आचरण हमें धर्म और संस्कृति के विराट रूप को समझने में सहायता प्रदान करता है।

सन्दर्भ–

1. मार्शल, जॉन – बुद्धिस्ट इंडिया, कैम्ब्रिज, 1938, डॉ0 ली में की प्रस्तावना
2. कुमार स्वामी – हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, लंदन, 1927, पृ. 157
3. शास्त्री, नीलकण्ठ – ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मद्रास, 1966, पृ. 320–333
4. चंद्रा, लोकेश व अन्य (संपा.) – इंडियाज़ कंट्रिब्यूशन टू वर्ल्ड थॉट एण्ड कल्चर, मद्रास, 1970, पृ. 123–134
5. उपाध्याय, डॉ0 भगवतशरण – बृहत्तर भारत, दिल्ली, 1986

Promoting Sustainable Development through Higher Education : An Overview

Editor : Dr. Supriya Singh

Co-Editor : Dr. Kumud Ranjan

Publishers:
Kala Prakashan
B. 33/33 A-1, New Saket Colony,
B.H.U. Varanasi-5
Phone: 0542- 2310682
email. kalaprakashanvns@yahoo.in

© *Patron-* Prof. Rachna Srivastava
Editor- Dr. Supriya Singh
Co-editor- Dr. Kumud Ranjan
First Edition: 2021
ISBN: 978-93-87199-96-5
Price: 650.00 /-

Composed at:
Kala Computer Media
B. 33/33 A-1, New Saket Colony,
B.H.U. Varanasi-5
Phone: 0542- 2310682

Printed at:
Manish Printing Press
Saket Nagar Colony, B.H.U.
Varanasi-221005

Foreword

In a country like India which is a melting pot of many cultures, it is essential that students imbibe appropriate values in accordance with the country's social, cultural, economic and environmental realities at local, national & universal level.

There are certain core universal values like truth & righteousness that should invariably be inculcated among students. The seeds of values sown in the early stages of education have to be reiterated and reemphasized by HEIs by providing appropriate learning experiences and opportunities to students.

The present book based on NAAC sponsored seminar on ***Fostering Global Competencies along with Value System among Students: Role of HEIs,*** is an endeavor in the same direction. I hope we are able to analyse the theme of the seminar in the book and find ways to achieve a balance between employability and values and build good human beings beside engineers, administrators, lawyers and so forth.

The balance between values and skills in today's world is becoming a necessity in the light of the current scenario. The year 2020 taught humanity a number of lessons. And one of them is trying not to play with nature. Empathy towards living as well as non-living beings is to be imbibed by all of us and HEIs have to take the responsibility to instill this amongst the youth. I believe the articles in this timely book will serve the purpose and would show us the right path.

I appreciate the effort put in by the Editor to bring out this book.

... ✍ **Prof. Rachna Srivastava**
Principal

✦

Contents

Foreward	.. ..	iii
Message	.. ..	iv
Acknowledgement	.. ..	v
Preface	.. ..	vi-xvi

1. **Introduction** 19-23
   Dr. Supriya Singh
2. **Values in Higher Education : Indian Perspective** 24-43
   Devendra Nath Tiwari
3. **Challenges of Sustainable Development Goals and Youth Empowerment in India** 44-67
   Ramā Kant Rai
4. **Holistic Development: The Gandhian Way Forward** 68-76
   Rita Agrawal
5. **Enhancing Skill Competencies for Rapid Development in Indian Context** 77-86
   Dr Archana Mishra
6. **The Importance of Physical and Mental Fitness in Higher Education as part of India's Growth Story** 87-92
   Saumye Ranjan
7. **Emotional Intelligence: Promoting Skills that Matter** 93-97
   Dr.Madhuri Agarwal
8. **Significance of Literature in a Value-based Education System** 98-104
   Dr. Niharika lal
9. **Human Values in Literature: A Need of the Present Time** 105-112
   Dr Anupma Garg
10. **Vocation & Value-Orientation in the Educational Principles of Historical India and Contribution of Theosophical Society** 113-120
    Dr. Nairanjana Srivastava

11. **Need of Reading Literature in Higher Education** 121-124
Dr. Purnima

12. **Skill Development through Experiential Learning: Concept and Implementation in Education System** 125-134
Dr. Jai Singh

13. **Significance of Traditional Knowledge and Indigenous Pedagogy in Higher Education: A Step towards Sustainability** 135-140
Dr.Sunita Dixit

14. **Holistic Development And Sensitizing Stake Holders** 141-147
Anamita Mitra

15. **Value Education and Skills Development in Relation to Indigenous Enterprises** 148-152
Dr. Priyanka Kumari

16. **Human Resource Development and Skilled Unemployment in India** 153-163
Dr. Akhilesh Kumar Rai

17. विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के शैक्षिक वातावरण को कैसे बेहतर बनायें? 164-178
सिद्ध नाथ उपाध्याय

18. मानवीय मूल्यों का व्यवसायीकरण 179-182
डॉ0 नन्दिनी वर्मा

19. उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता 183-188
डॉ0 ममता मिश्रा

20. भारत में कौशल विकास एवं मूलपरक शिक्षा : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य 189-192
डॉ0 पूनम पाण्डेय

21. शैक्षिक परिदृश्य में कलाओं के समन्वय की आवश्यकता 193-198
डॉ0 सीमा वर्मा

22. हिन्दी गीतिनाट्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति 199-204
डॉ0 शशिकला

✦

10.

Vocation & Value-Orientation in the ıcational Principles of Historical India and Contribution of Theosophical Society

+ Dr. Nairanjana Srivastava

+ *Asst. Prof., AIHC & Arch, VKM, Kamachha, Varanasi*

Education is enculturation of man which enables him interact with his environment in a worthy way. Higher education is a step ahead in facilitating his innovative and creative faculties. It encompasses individual growth and fulfilment towards social upliftment, economic mobility and cultural up-gradation to realize the dream of world-peace and harmony. It is a lucrative business too, for both educationists and economists for it only has the potential to bring economic progress through social change. It has been rightly pointed out by Henry Commanger that ' change does not necessarily assume progress, but progress implacably requires change. Education is essential to change, for education creates both new wants and the ability to satisfy them.' It will not be inappropriate to state that education has been an important state-policy, economic investment and a liver in raising the lives of people. Therefore designing aims and objectives of higher education is a job of highest vigilance for any society. Ancient Indians were sensible enough to put maximum weight on the holistic development of its citizens. From Shramans to Brahmacharis to the system of four Ashrams and even the Varna-system, the life of an Indian was devised in such a way that it helped everyone become fully satisfied in its personal life and discharge its duties towards society and the nation with utmost perfection and readiness. The primary education under Hindu and Shraman tradition was provisioned as an attachment to temples and monasteries. Although there was no written curriculum, 'Gurus' used to design such teaching-methodology which would ensure overall development of the students. The ancient Indian system of education also involved stages of higher learning for which 'Parishad' and 'Sammelan' were the words used in Rig-Veda and Upanishads.

'Panchal Parishad' was one such academy where even kings used to participate in worthy discussions carried out in the favour of progression of intellectual faculties of its citizens. Between 6th to 2nd century BC, higher learning took a shape as specialization in branches of Vedangas and it led to the establishment of universities like Taxila, Nalanda, Ujjaini etc. where subjects based on religion and skill training (medicine and astronomy) were taught. From the very early times the Indian education system was based on the specialized courses in history (Itihas), logic(Aanveekshiki), interpretation(Mimansa), polity(Arthashastra), economics (Varta-shastra), archery(Dhanurvidya), architecture(Shilpshastra) etc. Subjects were divided into two chief categories of 'Shastra' and 'Kavya', meaning discipline and literature respectively and a third integral part was sports and physical-exercise.

Education in India before the colonial obligation is divided into three main religious categories, i.e. Hindu, Buddhist and Islamic. Their religious bending was common as education was kept an essentially integral part to the religious propagation. Pathshalas, Bauddha-Vihars and Maqtaba – Madrasas were institutions where students received elementary to higher education. The aim of education throughout this period was all-encompassing. Focus was on equipping the learner with vocational abilities, management proficiency as well as relevant life skills. Here one can observe the unavoidable role played by religion of giving meaning to material-gains and refining the objectives, set as educational achievements. The educational model adopted in Pathshalas and Vihars was mostly based on teaching of subjects like grammar, language, religion, philosophy, history and medicine. It enabled students to get jobs as a clerk, teacher, administrator, judge, doctor etc.

Muslim period in India (Sultanate and Mughal period), although started with ruining the prevalent systems, is marked by well-developed elementary to advanced education where teaching of Islamic principles and socio-cultural conventions was conducted to facilitate Muslim administration in India. Even residential colleges were there to promote post-graduation courses in specialized branches of learning like, Mathematics, Astronomy, Physics, Geometry, History, Philosophy, Literature etc. The willingness for

technical and vocational training is evident by the official documents of this period (Gupta, 2007)

Mughal rulers monitored educational arrangements in their empire very carefully. One should appreciate Islamic tradition of learning in the field of mathematics, fine arts, architecture, astronomy and medicine. They provided primary education to general public including both the genders. There was a separate department, namely 'Suharat-E-Aam' responsible for the opening-up of schools and colleges in the regime of Babur. Mughal emperors were, in general, most enthusiastic for learning, maintaining public as well as their personal libraries, commissioning translation projects of sectarian texts etc., through which the needs of empire were fulfilled. But in doing so they could also establish an education system which promoted oriental model of classical learning flavoured with Arabic and Persian theology, religion and philosophy (Dinesh Chand, 2015).

It would be interesting to observe that, European renaissance and Mughal domination in India were contemporary events in history. Where on one hand, Europe with its scientific approach, could be able to accept science and technology as its anchor to sail from 'dark age' of Holy Roman Empire to the bright age of enlightenment, Mughals in India, contrary to this continued with the practice of old-tools-based agricultural economy and did not feel to switch over to sudden scientific changes. They instead appropriated education system which was lacking structural reforms to suit to the time. When in the 18th century Englishmen entered India, their sole objective was to feed their imperial aspirations from Indian raw-market which supplied them with clerks, sepoys etc. and definitely not to give Indians an upgraded scientific training which may enable them to generate skill-based employment.

The collapse of Mughal rule presented a confusing state before the society although. Closing of old teaching institutes proved to be fatal for the religious grooming which inevitably brought social anarchy. To make the situation even worse, the unemployed Pundits and Mullas now proposed conservative concepts of religious chastity which was hailed happily by both the communities, i.e. Hindu and Muslims. It created a vacuum in society in terms of learning and

employment. Religious interpretations became highly personalized and strengthened the barriers of caste and class. This can be held as a reason why Christian missionaries succeeded in building a favourable environment for the western ventures to east through sympathetically penetrating into underprivileged communities. Roman Catholic missionaries were the first to enter India at the time of Portuguese possession with an aim of converting native Indians to Christianity. Their successors, the French people, encompassed Indians into their education-system focusing mainly on southern parts of India. It established a secondary school at Pondicherry which imparted liberal education to the country-men. But not to forget, the exercise was focused on the lower class and at elementary level of learning only.

During the period of British rule, centres of Indian model education i.e. Gurukul and universities, where integrated study programmes used to run were deliberately disregarded. Missionary schools, colleges and higher education institutions, set by various western enthusiasts at different locations in present day Andhra-Pradesh, Karnataka and Tamilnadu, introduced English values and culture in their educational establishments. No need to mention Lord Macaulay drafted the syllabus of colonial domination for Indians who were kept at a distance from the training of science, mathematics and technical skills at all levels of formal education. Indians were encouraged to study only arts and humanities, through which the British administration could be bureaucratically empowered. It was a deliberate move by Macaulay to discourage Indians from pursuing technical and scientific studies at high-school level which further limited their opportunity of higher training in science and technical courses. Before the beginning of 19th century, education in India was mostly imparted in vernacular language. The officials of East India Company, through their personal efforts set-up Madrasa (1781) and Sanskrit Vidyalaya (1792) in Calcutta and Varanasi respectively. Lord Wellesley started Fort William College in the year 1800 whose chief objective was to train Company's administrators (Civil Servant) in the language and customs of the country for better custody of their colonies in India. Although education was used as a tool and exhibition of ruler's will and strategy from as early as mughal period, adoption of one language as

a standard medium of learning was devised only after the recommendations of Macaulay. Before him, the Charter Act of 1813 had already paved the path for government-funded English-education programs. It further received impetus in the form of Macaulay's famous memorandum on education before British Parliament, in 1833. Lord William Bentinck in 1835 accepted and manifested legislative provisions in the favour of Macaulay's arguments. This Act very hastily intensified non-cooperation with oriental-learning institutes, not only in terms of vernacular being overrun by English but also native characters being overshadowed by British schemes of science and philosophy. To their convenience, Indians themselves shed down their traditional education and succumbed to the bright light of Christianity. Acceptance of new education of Christian missionaries in this period is a reflection of this. It is beyond doubt that Macaulay's contribution in disrespecting and demoralizing native identities gained the ruling class a standard ground for westernisation. Although his arguments in British Parliament can be a reflection of his incomplete understanding of Indian cultural tradition but for the sake of awakening of Indian people it somehow highlighted the urgency of self-improvement among 'Hindus' as well.

Intervention by Theosophical society: During the closing years of 18th century, America and Briton sent missionaries to the non-Christian parts of the world. These enthusiasts silently propagated the Gospel to the parts of India especially Madras and Andhra Pradesh by facilitating the downtrodden communities with medicine, education and sympathy. To fulfil their objective the missionary people translated Bible and the teachings of Gospel into Indian languages and promoted only literary activities in their educational establishments. Learning of Literature attained primary focus with opening of printing houses as an attachment to the schools. However there were few indigenous groups which resisted the excessive indulgence of missionaries in the progression of colonial intentions and Biblical morals in the schools. In the middle of the 19th century, much unrest was reported due to which a need was felt of an alternative system of education which could offer a link between tradition and modernity; skill and virtues. In this situation, Theosophical Society stepped forward to educate Indian youth about universal good, global competencies and oriental

excellence. It did not confine itself to moral and religious discussions only but promoted skill-learning, sex and environment education etc in its school curriculum. Apart from this it was also the mission of the Theosophical Society to bring western nations closer to the understanding of Indian thought and knowledge (Annie Besant, Theosophy and Theosophical Society, 1913,p.3).

Col. Olcott, the founding President of Theosophical Society lectured the gathering of Framji Cowasji Hall, Dobithallas (the washer-man quarters on march 23, 1879) that 'modern India' needs scientific education badly and that scientific schools must be attached to every college and in each centre appropriate machinery should be provided where the most improved methods of the principle of handicrafts could be taught to intelligent lads. He was of the opinion that Indian youth should have a systematic knowledge of industrial arts and science. Every Indian should be trained in arts, science and design (skill) along-with philosophy. The Theosophist Olcott centunary numbered, by Annie Besant, .Pp. 541-544) at school level he reached to his ideals by introducing industrial and technical education to the students. Boys and girls were trained in various arts like black-board and pencil-making, book-binding, needle-work and practical crockery etc. At the same time the Society greatly encouraged vernacular learning and established Sanskrit schools to inspire the members with high moral values of the east. Another important contribution of the members of Theosophical Society was that they published literature on ancient Indian science and philosophy for which the co-founder of Theosophical Society Madam Blavatsky congratulated the members. In 1907, second president of the Society Dr. Annie Besant took the educational objectives of Theosophical Society further and emphasised upon holistic development of society through education. She devised four-fold system which included religious, emotional (moral and mental), physical and environmental training to the students. Under the scheme of moral and mental development study of languages, science, mathematics, psychology and training in moral and aesthetic values were encouraged. It would be relevant to mention that Dr. Besant wanted Indian orientalism to be meticulously moulded by the scientific knowledge of the occident to achieve the ideal of a well cultured society. Her students in Central Hindu College, Banaras, on the donation of which BHU was founded, were taught the literature

of east and west. The syllabus contained modern science and ancient religion and ethics. Dr. Besant strongly rationalised religious education as part of teaching curriculum and professed that religious teaching should be given without being fanatic and sectarian. The religion should be a unifying force to build nationality and a fostering mother of civic virtues. As an active worker to social needs, she prepared her students in the college for active social life as well.

Theosophical society, which was a volunteer organization, thus seems to be acting as a bridge between age old Indian system of education and new emerging realities. The first president of T.S., Col. Henry Steel Olcott established his first school in 1894 with an aim to provide free education to the untouchables, whose population at that time was almost 60 million. Theosophical Society tried to prepare a vernacular draft to counter new education of the west. Western education used Indian colonies of Briton as its office where clerks and supervisors could be engaged in secondary jobs of assisting their engineers and administrators but could not rise to the highest position of the office. The initiative of picking Indians amongst their fellow-men on the basis of caste and class added to the plight. It is another notable fact that in historical India, skill based professions was always considered works of Shudra-class and not to be practised as a voluntary vocation. It could not make into the list of university-syllabus as well. The art of metallurgy, stone-cutting, architecture etc. although important for country's development, were not part of formal education. The society (Theosophical Society), after years of realizing the need for skill-training, firstly devised their school-curriculum having it as a part. Fact should be highlighted that the society was educating higher caste Hindu boys and girls along-with untouchables all kinds of practical and skill-training in addition to regular lessons in science and humanities. In this background the services provided by Theosophical society should be hailed with immense respect. Their intention was clearly to make India the world leader. Col. Olcott and Dr. Besant were both of the belief that values inherent in Indian education should be equipped with skill- training and vocational qualification. Their efforts were towards attaching value to skill and thus creating self-employment for youth of the colonial East. Never did they try to separate religious training from formal education as they could

foresee complete collapse of human behaviour in the absence of balance and discipline acquired with the adequate understanding of religion.

References:

1. Gupta, Manju: Education in India, 2007, KSK Publisher and Distributors, Delhi-2,ISBN:8190461757, p.54
2. Chand, Dinesh: Education System in Pre-independence India, International journal of Applied Research , 2015; 1(2): p. 110-113, ISSN-Onliners-2394-5869
3. Misra, Atmananda: Educational Finance in India, 1962,Bombay,p. 78,Quoted in Y. Vittal Rao Education and Learning.
4. Ingham, Kenneth: Reformers in India, 1793-1833, An Account of the work of the Christian Missionaries on behalf of Social Reform (London, 1956)
5. Education and Theosophy, https://www.theosophy.world/encyclopedia/education-and-theosophy
6. Besant, Annie : Theosophy and Theosophical Society, 1913, Adyar, Madras, P.3
7. Sundar, K.H.S.S.: 'Valasa Vidhyavidhanam - Anvelinta Mataprameyam' (Telugu) in the poceedings of A.P. History Congress , 1994,Tenali, Pp. 112-114.
8. Mathew ,A.: 'Protestant Missionary Attitudes Towards Higher Education and Nationalism in Madras Presidency, 1872-1930' in Indian Dissertation Abstracts, Vol.XVI, No.2, April-June 1987, Pp. 220-221
9. Jinarajadasa C.: (ed). The Golden Book of Theosophical Society, 1925, TPH, Adyar, Pp.295-296.
10. Besant Annie: 'Education and Theosophical Society' in The commonweal, 12 March, 1915, TPH, Adyar, p.191.
11. H.S.Olcott lectured at Framji Cowasji Hall, Dobithallas (The Washerman Quarters) on March 23, 1879, in The Theosophist (Olcott centunary number) ed., by Annie Besant, TPH, August 1932. Pp. 541-544.
12. Wimbridge, E.: 'Technical Education' in The Theosophist, Vol.1, No.l, October l879, Bombay Pp.26-27.
13. Supplement to the Theosophist, The Theosophist, Vol.XXII, No.6, March 1906, TPH, Adyar, P.xvii.

★

KALA PRAKASHAN

B. 33/33, A-1, New Saket Nagar Colony
B.H.U., Varanasi

ISBN : 97-93-87199-96-5

ISBN : 97-93-87199-96-5

M.R.P. Rs. : 650.00

The Indian Renaissance and Swami Vivekananda

Editor :
Dr. Niharika Lal

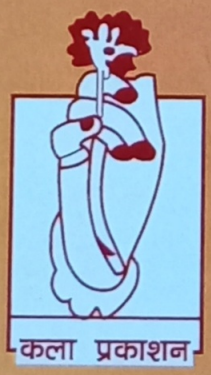

KALA PRAKASHAN

B. 33/33, A-1, New Saket Nagar Colony
B.H.U., Varanasi

ISBN : 978-93-87199-44-6
9 7 8 9 3 8 7 1 9 9 4 4 6
ISBN : 978-93-87199-44-6

M.R.P. Rs. : 1100.00

Publishers:
Kala Prakashan
B. 33/33 A-1, New Saket Colony,
B.H.U. Varanasi-5
Phone: 0542- 2310682
E-mail : kalaprakashanvns@yahoo.in

© Principal, V.K.M., Kamachha

First Edition: 2022
ISBN: 978-93-87199-44-6
Price: Rs : 1100.00 /-

Composed at:
Kala Computer Media
B. 33/33 A-1, New Saket Colony,
B.H.U. Varanasi-5
Phone: 0542- 2310682

Printed at:
Mahavir Press
Bhelupur, Varanasi

Contents

Acknowledgment		... ...	**iii-iv**
Foreword		... ...	**v-vii**
Preface		... ...	**viii-xviii**
Chapter No.	***Chapter Name***		***Page No***
1	**Why Study Swami Vivekananda** *Dr. Anirban Ganguly*	... ...	**23-29**
2	**Understanding Swami Vivekananda** *Prof. Sanjay Srivastava*	... ...	**30-33**
3	**भारत में पुनर्जागरण** *Prof. R.K. Mishra*	... ...	**34-40**
4	**शिक्षा का अर्थ एवं महत्व** *Prof. Geshe Nawang Santen*	... ...	**41-46**
5	**स्वामी विवेकानंद और राष्ट्रवाद** *प्रो0 रवि प्रकाश पाण्डेय*	... ...	**47-52**
6	**स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त** *प्रो0 राजीव रंजन सिंह*	... ...	**53-58**
7	**विवेकानन्द का शिक्षा में योगदान** *प्रो0 कल्पलता पाण्डेय*	... ...	**59-69**
8	**स्वामी विवेकानन्द : घनीभूत भारत का पूर्णार्थ** *डॉ0 चंद्रकला त्रिपाठी*	... ...	**70-72**
9	**धर्म, शिक्षा और राष्ट्र** *प्रो0 रचना श्रीवास्तव*	... ...	**73-82**

10 Vivekananda's Poetry : A Catharsis 83-87
Dr.Bina Singh

11 Swami Vivekananda's Vision on Rural Development 88-103
Dr. Kumud Ranjan

12 Relevance of Vivekananda for Inclusive Development of India 104-112
Dr. Indu Upadhayay

13 Swami Vivekananda and Dr. Annie Besant 113-117
Dr. Nairanjana Srivastava

14 Swami Vivekananda on Social Equality 118-124
Dr. Anuradha Bapuly

15 Swami Vivekananda's Ideas and Philosophy of Education 125-133
Mrs.Priyanka

16 The Nineteenth Century 'Indian Renaissance' and Swamiji's Spiritual Renaissance 134-145
Partha Sarathi Nandi

17 Education For Social Reconstruction And Swami Vivekananda 146-153
Dr. Vijaya Rao

18 The Indian Renaissance And Swami Vivekananda 154-163
Yadavendra Dubey

19 An Unexplored Strand of a Monk: Relevance in the Contemporary Era of Intolerance 164-170
Dr. Supriya Singh, Ramesh Singh

20 Swami Vivekananda's Concept of Womanhood 171-174
Dr. Madhuri Agarwal

21 Swami Vivekananda and National Awakening 175-179
Dr. Renu Srivastava

22 The Quest of a Nation : Vivekananda's Approach to Formulating a National Identity and Unity 180-186
Dr. Purnima

23 स्वामी विवेकानन्द का समाजवादी चिंतन एवं नव्य वेदान्त समाजवाद 187-190
डॉ. कल्पना आनन्द

24 युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द 191-198
डॉ. दीप्ति सिंह

25 स्वामी विवेकानन्द : एक अज्ञात कवि 199-203
डॉ. सपना भूषण

26 स्वामी विवेकानन्द जी की धार्मिक दृष्टि 204-209
डॉ0 ममता मिश्रा

27 समकालीन समय में राष्ट्रवादी विमर्श एवं विवेकानन्द के विचार 210-213
डॉ0 शशिकेश कुमार गोंड

28 स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में मानव-एकता का आदर्श 214-224
अश्विनी कुमार

29 स्वामी विवेकानन्द के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता 225-235
त्रिभुवन मिश्र, अमित कुमार

30 स्वामी विवेकानन्द जी के दर्शन की धर्म विषयक अवधारणा 236-246
डॉ0 विभा रानी

31 भारत का नवनिर्माण : स्वामी विवेकानंद की दृष्टि 247-254
डॉ0 आशा यादव

32 स्वामी विवेकानंद की शिक्षा और अनहद नाद 255-262
डॉ0 मीनू पाठक

33 ऊर्जा स्रोत विवेकानन्द 263-269
डॉ0 पूनम पाण्डेय

34 स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक अनुगूँज में सांगीतिक स्वर 270-276
डॉ0 सीमा वर्मा

★

13

Swami Vivekananda and Dr. Annie Besant

✦ **Dr. Nairanjana Srivastava**

It is a matter of great joy for a society of the most ancient origin that two of its greatest interpreters emerged at an approximate vicinity of time, when its people needed self pride the most. Scientific and secular nature of a world religion started being conceptualized on a liberal and logical ground. In India , it was Vedanta which provided Swami Vivekananda with an insight into the complexities and questions of his times and in the west, the Theosophical Society did the task of understanding and exploring the true meaning of the Supreme Being for Mrs. Annie Besant. Both these efforts were in-sync with the Upanishadic school of thought and recognized the power of Indian intellect in their respective establishments. When closely observed, the leaders of these two organizations, i.e. Vedanta and Theosophical Society, manifest remarkable similarities. Narendra Nath Dutta(1863-1902) and Annie F. Besant(1847-1933) both were restless in their journey to find the truth, until the truth was availed and both hated severely the weakness prevalent in their brothers and sisters of the globe, due to their forgetting the inseparability from the Supreme Consciousness. Hence it provides an interesting field to study the connection, whatsoever, between Swamiji and Dr. Besant, their similarities as well as their differences.

Swami Vivekananda was a psycho-physical construct of highest attainable qualities of a human being. He extracted most of the circumstantial benefits of his times through an extraordinary meditational

✦ **Asst. Prof., Department of AIHC & Arch. VKM.**

insight. Similar was the case with Dr. Besant who chose her path amidst severe odds and translated her emotional sufferings into a triumphant social life. Spirituality was inherent in both and so was the concept of universal brotherhood. Regarding differences, Vivekananda's thought-process was more towards assimilation whereas Dr. Besant emphasized more on rejection.

This factor, for all their lives as pioneer saints, influenced their course of action in future. Dr. Besant starts from scepticism and so does Narendra, but the nature of scepticism differs in both the cases. Annie had to combine her urge for liberated spirit with the negation of all that leads to an unjust surrender to a single imposing authority and Narendra wandered as a recluse in order to subdue the doubts created by mindless multiples. Both vigorously questioned the truth and reached to their destined salvation but Vivekananda's journey ends demanding a universal religion without a label and Dr. Besant opts for a label to demonstrate universal brotherhood.

This gives rise to a question, rather an obvious inquiry, that having so many similarities and differences and sharing approximately the same slot on the date sheet of history, did they ever get a chance to meet and discuss their thoughts!

There is an ideological affinity between Vedanta and Theosophy, because of their deriving inspiration from the Upanishads. Gandhiji once observed that Dr. Besant's Theosophical belief was, in its true meaning, nothing else but 'Practical Hinduism'. Dr. Besant herself calls Theosophy as 'Brahm Society' because both address directly to the scientific quest of religions. Hence it becomes more interesting to study the interactive connection between Swami Vivekananda and Dr. Annie Besant.

There is almost negligible account of any such meeting between the two and even a focused study could fetch the author with just two incidents of their meeting-on –tea kind of face to face interaction.

Reports say they met twice, first in Chicago and second in Almora. What followed these meetings is obscure to us. Before meeting Dr. Besant, Swamiji got a chance to talk to Col. Olcott, the

co-founder of Theosophical Society. Romain Rolland writes in his book 'The Life of Swami Vivekanand' how Col. Olcott not only turned down his request for a letter of introduction for the Parliament of Religions, but filled with some unknown apprehension, warned his friends in America against him. Who were those friends in America? We know with certainty that Annie Besant represented Theosophy at the Chicago conference and perhaps she was the one warned by Col. Olcott against this enigmatic recluse from India. The rejection and warning by Col. Olcott shows that somewhere Narendra Nath Datta disturbed the realm of his eternity. But at Chicago, sitting in the same hall, Dr. Besant couldn't escape the healing vibrations waved by Swami Vivekananda.

From the autobiography of Dr. Besant we come to know about the impression she carried when both met at the Parliament of Religions. She writes about Vivekananda, "His figure was distinct with pride of country, pride of race." She witnessed at that platform, the frenzy and obsession of the west to capture every single word uttered from his mobile lips. She remembered one saying, "Oh! We send missionaries to his people. It would be more fitting that they should send missionaries to us."

But Vivekanada seems little affected with the presence of Theosophy or Dr. Besant at that platform. He, in fact, sounds harsh in one of his statements made on Dr. Besant. A local daily 'Times' reported him saying boastingly, 'I lectured to her (Mrs. Annie Besant) in London, for some time (about Upanishads).' Naturally it hugely escalated anger among the followers of theosophy and Dr. Besant. But on the basis of this one incident we should not reach to any conclusion about his alleged dislike of the second party.

Narendra Nath Dutta was against institutionalizing religions. Was he questioning the knowledge base of Theosophical Society..? We know not..! Swamiji himself was working on the stubborn and fanatic mindset of the youth which once made him merciless towards the intolerance of missionaries. In his later years he became tolerant and nowhere forgot to carry with him the 'Imitation of Christ' side by side with 'Bhagwad Gita'. He started incorporating in his faith, all the faiths of the world.

After this first partially controversial meeting in Chicago, both of them again met in Almora. There is a single reference found in this regard. Writing a letter to Rakhal on 20th May 1898, Swami Vivekananda informs him about his meeting with Dr. Besant. He writes, "....On the opposite side (of my bunglow) Annie Besant is staying..... Annie Besant told me entreatingly that there should be friendship between her organisation and mine all over the world, etc. Today Besant will come here for tea....". This conversation carries some brilliant hope for future in the present context. Although the consequences of their prospective meeting is not known to us, we can only presume that had Swamiji got a longer life, the affiliation of the two would have changed the shape of social reforms and the political fabrication in India.

Apart from these two face to face interactions there were various other occasions when Dr. Annie Besant expressed her highest regards for the person and mission, Vivekananda was for India. More than once Dr. Besant admired Swami Vivekananda, although we have almost no account available to know what Swamiji's perception of Mrs. Besant was.

Praising Vivekananda's efforts for the awakening of his own people, Mrs Besant, on her visit to Ramakrishna Student's Home, said that 'She as well as Swamiji foresee English-educated Pundits as the future of a new India'. She continues with her suggestion that, "Learn certainly all that the colleges have to teach you, and all that will help you to influence the English-educated classes, the leading class in this country. Learn also your own great faith. By that faith India is to be helped to keep her place, or rather, make a still greater place among the nations of the world. In the western countries they have lost so much of the philosophy of religion that the educated men mostly stand outside it. They look at it as a religion for the uneducated, for women, for children, but not for the highly educated and scientific men. There lies your great advantage".

At the end of her lecture she congratulated the students with these words, "I believe that from these places will come out the very best workers that the motherland can have." These words of Mrs.

Besant not only show her respect for her second home 'India' but also her acceptance of the ideas of Swami Vivekananda and ideologies of Ramakrishna Mission.

True it is that such hypothetical questions set no path-breaking example in history. It is even believed that few questions in history are better left unanswered. But with a sensitive issue like the discussed one, it will be fruitful to change the perspective and think that what could have been possible if they had exchanged serious dialogue in their meetings. The enquiry thus analyzes the relevance this meeting bears on Indian history and one may conclude with the following observations :

- These unparalleled fanatics might have exchanged the brightest of ideas on nation-building.
- Their spirituality might have influenced the course of action in the war against British domination.
- Their compassion might have won inclusive development for the people of India and the world.
- The common truth might have overrode differences from the future globe.
- This mother and son duo from west and east might have proved to be the steroids to the weakness of humanity.

This and probably much more could have been achieved if only Swamiji got few more years of life and they got the chance to jointly take up the task of freeing Indian people from the negative impact of domination.

Reference

1. The Life of Vivekanand And The Universal Gospel by Romain Rolland, 1999, Advait Ashram, Calcutta
2. Theosophy in India, 1914, pp. 144-145
3. Debates on the pages of The Hindu(online page) 12-Jan-2013, m.thehindu.com
4. The Complete Works of Swami Vivekanand/Vol. 8/ Epistles- 4th series/ CXXVIII Rakhal, en.m.wikisource.org.> Vol.8, last update 16.04.2012

★